शिवार्चन

गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्माविष्णुशिवात्मकम्
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्संपूजयेद् गुरुम्

श्री सोमानन्दनाथ
नमस्ते गुरुदेवाय सर्व सिद्धि प्रदायने
सर्व मंगल रुपाय सर्वानन्द विधायने

निरंजन ग्रन्थ माला पुष्प-३२

शिवार्चन

माता मे पार्वती देवी पिता देवो महेश्वरः
बान्धवाः शिव भक्ताश्च स्वदेशो भुवन त्रयम्

संस्करण सम्पादक

रत्नेश्वर झा

मदन मिश्र

प्रार्थना

यह शिवार्चन है।

"शिव-महिम्न" शब्द-पुष्पांजलि है। वाग्मयी पूजा है। पुष्पदन्त ने की, कर रहे हैं आज भी। करते हैं अनेकानेक नाम-रूप से। शिव गुरु हैं, पुष्पदन्त प्रिय शिष्य। शिष्य से अपराध हो गया। शास्त्र-आज्ञा अनुसार पद-भ्रष्ट हुआ। भक्ति दृढ़ थी—पथ-भ्रष्ट नहीं हुआ। पुष्पदन्त ने गुरु शिव की आराधना हेतु "शिव-महिम्न" रचा। युग-युग से लाखों-लाख लोग इसके पाठ से धन्य हुए, आज भी हो रहे हैं। निग्रह अनुग्रह में बदल गया। महान का क्रोध भी कल्याणकारी होता है।

'शिव-ताण्डव' के पदों द्वारा रावण ने शिव की स्तुति की। भक्त नाच-गाकर आराध्य को प्रसन्न करते हैं। बोलना-गाना, कर्म-नृत्य सदा कल्याणकारी हो, सदा शिव हो, शिव को ही समर्पित हो।

ये दोनों स्तुति स्वनाम धन्य हैं। विश्रुत और विख्यात हैं। मुखरता क्षमा करें। यह शिवार्चन है।

'शिव-महिम्न' का गायन हिन्दी भाषा में भी हो सके, ऐसी प्रार्थना रत्नेश्वर ने गुरुदेव से की थी। संस्कृत भाषा के अध्ययन का सौभाग्य जिसे इस बार प्राप्त नहीं हो सका था, वैसे व्यक्ति की यह प्रार्थना क्षमा योग्य थी। आज्ञा मिली उसे ही—हिन्दी अनुवाद आप ही कर दो। वह चला आया।

इस बीच भक्तों ने फिर प्रार्थना की। भक्त तो उमा हैं। गुरु शिव, भक्त शिवानी की प्रार्थना अधिक कैसे टाल सकते हैं। शिव हैं औढ़रदानी। घण्टे भर के अन्तराल में "शिव-महिम्न" और 'शिव-ताण्डव' का हिन्दी रूपान्तरण निस्सरित हुआ। भक्तों ने लिख कर वितरित किया।

इधर चरितार्थ हुई श्री हस्तामलक की कहानी। हस्तामलक—गूंगा-बहरा बालक। माता-पिता ने गुरुवर आदि शंकराचार्य को समर्पित कर दिया। गुरु श्री शंकर ने प्रश्न किया, हस्तामलक ने उत्तर दिया। प्रसिद्ध है "श्री हस्तामलक स्तोत्र"। किन्तु विज्ञजन इसे गुरु भगवत्पाद श्री आदि शंकराचार्य की ही कीर्त्ति जानते-मानते हैं। रत्नेश्वर ने भी 'शिव-महिम्न' का अनुवाद कर दिया तो इसमें क्या आश्चर्य ! गुरु-तत्त्व की महिमा ! गुरुदेव

द्वारा किये गए अनुवाद की सूचना से अनभिज्ञ, उसने जब अपना प्रयास समर्पित किया तो कृपालु गुरु ने उसे कुंठा से, शास्त्रीय दोष से बचाने के लिए, उक्त अनुवाद श्री विष्णु के नाम अर्पित कर दिया। "ऐसो को उदार जग माहीं।"

उस दिन श्रावणी शुक्ल पंचमी (३-७-८४) को श्री भवानी शतक भाष्य के मुद्रण की प्रगति चर्चा के क्रम में शान्त सुशील युवक चि० अजय और उसकी धर्म-प्राणा माता ने प्रकाशन हेतु आर्थिक सहयोग स्वीकार करने की प्रार्थना की। उनकी श्रद्धा-भक्ति से द्रवित गुरुदेव ने अपनी स्वीकृति दे दी और स्वतन्त्र रूप से 'शिवार्चन' के प्रकाशन हेतु उक्त द्रव्य का उपयोग करने की आज्ञा हुई।

चि० अजय और उसकी माता—दोनों को ही श्रद्धा-विश्वास, भक्ति-निष्ठा अपने-अपने माता-पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है—श्री गुरुदेव का कथन है। रत्नेश्वर के लिए इसके आगे कुछ भी कहना अनुचित है। विशेषकर इसलिए भी कि चि० अजय उसका भांजा है, अजय की माता उसकी ज्येष्ठ सहोदरा। चि० अजय और उसकी माँ, सन्तों से, शिव-भक्तों से आशीर्वाद हेतु प्रार्थी हैं।

'शिवार्चन' में संकलित पुष्पों के लिए कुछ भी नहीं कहना है। यह तो शिवार्चन है। मुद्रण-संपादन संबन्धित त्रुटियों के लिए मदनजी सहित रत्नेश्वर क्षमाप्रार्थी है।

—रत्नेश्वर

ने जब अपना प्रयास
ीय दोष से बचाने के
ा। "ऐसो को उदार

ो श्री भवानी शतक
ील युवक चि० अजय
हयोग स्वीकार करने
ने अपनी स्वीकृति दे
क्त द्रव्य का उपयोग

द्धा-विश्वास, भक्ति-
प्राप्त हुआ है—श्री
छ भी कहना अनुचित
ा है, अजय की माता
सन्तों से, शिव-भक्तों

नहीं कहना है। यह
लिए मदनजी सहित

—रत्नेश्वर

भगवत् पाद
श्रीत्रिविक्रम तीर्थ

श्री निरंजनानन्दनाथ
श्री सोमानन्दनाथ

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

शिव महिम्न स्तोत्र

(भावानुवाद)

शिव ताण्डव स्तोत्र

(भावानुवाद)

सोमानन्द

ॐ

शिव महिम्न

क्षमा करें हे दुःखहारी हर, विनती मेरी, अज्ञानी हूँ
ब्रह्माजी भी महिमा का भरपूर गान क्या गा सकते हैं ?
अभी करूँ जो शुरू प्रार्थना, क्षमा करेंगे
निरपवाद परिकर की तुतली वाणी जी भर सुना करेंगे ॥१॥

सब ग्रंथों से ऊपर जो महती महिमा है तेरी
मन वाणी से परे जानकर वेद स्वयं भी सकुचाते हैं
कौन बनेगा सक्षम गुण गाने में तेरा, नव भक्तों
को रस देने हित, मन वाणी का तत्त्व रमेगा ॥२॥

मधु सम मधुर अमिय समपोषक निजवाणी को
वेद रूप में स्वयं आपने प्रकट किया जब
हे सुरगुरु ! विस्मय पद देने में अक्षम विरंचि की वाणी भी
मेरी क्या सामर्थ्य, मात्र शुचि करता मैं अपनी वाणी को ।।३॥

तीन गुणों के पार सृजन, पालन औ लय में
व्याप्त सदा है विपुल आपके वैभव का विस्तार
जड़तावश कुछ निन्दक अपना सर्वनाश हैं करते
यश तेरा तो रमणिकों का मूल स्रोत रहता है ॥४॥

महिमा तेरी ऐसी पावन समझ न पाते हैं हतबुद्धि
करते हैं कुतर्क नित मोह जाल में फँसे स्वयं रह
हे अतर्क्य ऐश्वर्य पूर्ण अविनाशी अव्यय
देह भाव मायामय जग में स्वयं भ्रांत वे रह जाते हैं ॥५॥

हे अज, इस जग का तो कोई भी कर्त्ता होगा
हे भव, भवविधि के सर्जक तो तुम ही होगे
बिना ईश के भुवन-जनन की लीला कैसी ?
फिर भी जड़िमा जटित जीव शंका करते हैं ॥६॥

वेद त्रय औ' सांख्य योग पशुपति मत ऐसा
वैष्णव औ' प्रस्थान त्रय के रूप घनेरे हैं
"रुचीणां वैचित्र्यात" नदियाँ ज्यों सागर से मिलतीं
सरल वक्र मार्गों से मात्र आप ही हैं मिलते ॥७॥

आपके साधन है खटवाङ्ग बैल हाथी का छाला
कपाल नाग फरसा औ' भस्म ही उपक्रम हैं
देवता तो उन सबों के सुख को भोगते पर
मृगतृष्णा क्या भरमा सकती स्वात्मारामों को ॥८॥

कुछ तो हैं मानते इस जगत को ध्रुव सत्य ही
और कुछ कहते इसे सर्वथा अध्रुव ही
हे पुरमथन इन सबों को देखते भी मेरी जिह्वा को
आपकी स्तुति की धृष्टता रोकी नहीं जाती ॥९॥

ढूँढने को आपके ऐश्वर्य को हरि ने पाताल को खोदा
ब्रह्मा ने गगन का भेदन किया जी भर
श्रद्धा भक्ति की गुरुता को माप कर प्रकटे स्वयं ही
क्या नहीं सुलभ है मात्र शिव-सेवा से ॥१०॥

रावण ने निष्कण्टक बनाया तीन भुवनों को
अपने मस्तक को कमल जो बनाकर
पाया अमित भुजबल सदा युद्ध शाली
महिमा विलसती है चरणों की सेवा में ॥११॥

रावण भुजबल बढ़ा था सतत आपके सेवने से
फिर मद में कैलाश को उखाड़ना ही उसे सूझा
गिरा वह पाताल में अंगूठे के अग्र भाग से आपके
निश्चय ही दुष्ट भूल जाते हैं उपकार को ॥१२॥

हे वरद, मात्र नमस्कार कर वाणासुर बली ने
इन्द्र से भी बढ़कर सम्पदा को पाया था
त्रिभुवन को उसने परिजन जो बनाया था
कौन नहीं उन्नत होगा, उन चरणों को प्रणामकर ॥१३॥

सुर और असुर दोनों पर कृपा हेतु विषम विष
पान कर आपने आदर्श जो जगाया था
कालकूट से कंठ की कालिमा वह शोभती है
हित करने वालों के दूषण भूषण कहलाते हैं ॥१४॥

वाण ले कामदेव ने जीता देव नर दानवों को
आपको भी उसने सामान्य देव माना था
दग्ध हुआ क्षण में, स्मरण को ही बचा रहा
कितनी दुखदायिनी जितेन्द्रियों की भर्त्सना ॥'५॥

असुरों को मोहितकर करते हैं नृत्य आप
पर दुःख बना रहता है फिर भी संसार को
आपके पदाघात से धरणी है धसती
वाहु और जटाओं से काँपता गगन-स्वर्ग ॥१६॥

आकाश में व्याप्त तारावलियाँ फेनोद्गम जैसी
जलधि वलय वेष्टित जगत् के द्वीप में
जटाजूट में गंगा जी नन्हीं सी लगती हैं
यही है आपके दिव्य वपु की उत्कृष्टता ॥१७॥

पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथी, हिमवान को धनुष बनाकर
सूर्य चन्द्र का रथाङ्ग बना विष्णु को वाण विषधर
इन आडम्बरों को क्रीड़ा हेतु सजाया तुमने
विचित्रता से खेल रहे, क्या निराले हैं स्वामी ॥१८॥

विष्णु ने प्रतिदिन कमलों का उपहार दिया
एक दिन कम रहने से नेत्र ही चढ़ाया था
वही आज चक्र है विश्व परिसीमा का
रक्षा करने में जगत की समर्थ है ॥१९॥

आपको ही समस्त यज्ञों का फलदाता मान
मानव मात्र करते अनेक यज्ञ-कर्म हैं
श्रद्धा भक्ति से यज्ञ का पूर्ण फल पाते हैं
आपकी आराधना से पाते हैं मधुर तत्त्व ॥२०॥

बड़े-बड़े ऋत्विज, ऋषिदेव थे उस दक्ष यज्ञ में
आपके अंश बिना ध्वंस हुआ यज्ञ का
आप फलदाता है त्रिलोकी के यज्ञों के
श्रद्धा से रहित यज्ञ नाश हित होता है॥२१॥

ब्रह्मा ने जब कन्या को मृग रूप धर खदेड़ा था
कितना आसक्त था ब्रह्मा काम भाव से
वाण जो चला आपका उसके पीछे आज
भी जैसे झपटता हो मृगशिरा ब्रह्मा को॥२२॥

यम नियम वाले हे पुरमथन, अनङ्ग तो जला ही है
फिर भी गौरी विलसती है मगन हो
मरे कामदेव से क्या मिलेगा पति सुख?
बहुधा युवतियाँ ज्ञानहीन होती हैं॥२३॥

भूत-प्रेत की संगति में क्रीड़ा श्मशान में
चिता भस्म लेपन औ मुण्डों की माला धर
लगता अमङ्गल चरित्र है आपका पर
भजने वालों को आप सदा मङ्गलप्रद हैं॥२४॥

अमृत सरोवर में नहाने से जैसे प्राणियों के
तापत्रय अपने आप दूर होते हैं
यम नियम आसन प्राणायाम से आनन्दमय हो
जिन्हें देखते तत्त्वमय वह आप ही तो है॥२५॥

अग्नि, सूर्य, सोम, पवन, व्योम धरणी आप ही हैं
आप ही सारे जगत भर की आत्मा
आप की ही प्रभा है विखरी बहुरूपों में
कोई भी स्थान नहीं जहाँ आप नहीं होवें॥२६॥

अ, उ, म औ' ऋगयजुः साम में तीन वृत्तियों में
तीनों लोकों और त्रिदेवों में सदा व्यस्त है
अवस्था त्रय से विलक्षण जो ॐ पद है
अखण्ड चैतन्य ध्वनि सूक्ष्मरूप से विलसती है॥२७॥

आपके नाम का जो अष्टक है भव, शर्व, रुद्र
उग्र महादेव भीम पशुपति आदि मंगलमय
इनके प्रतिनाम में बिहार करते हैं देव
ऐसे प्रियधाम का मैं नित्य वन्दन करता हूँ ॥२८॥

हे निर्जन वन बिहारी, अति समीप अति दूर
अति सूक्ष्म अति महान वृद्ध अधिक फिर युवा
सर्व के स्वरूप आप सदा है चिदात्मा
अनिर्वचनीय आपको नमः बारम्बार है ॥२९॥

जगत के स्रष्टा रजोगुण मय भव को है नमस्कार
सत्वमय पालक मृडदेव को नमन पुनः
प्रवलतम संहारक हर को कर नमस्कार
तीन गुणों के पार निस्त्र्येगुण शिव को नमस्कार है ॥३०॥

मेरा मन सदा राग द्वेष से पूर्ण है हे वरद !
आपके निस्सीमगुणों ने मुझे निर्भय किया है
आपके पुण्य चरणों में समर्पण हेतु पुष्पांजलि
मुझे वंदन करने को बाध्य जो किया है ॥३१॥

सागर दावात में काले पर्वत की मसि जो धरी हो
कल्प वृक्ष शाखा की उत्तम लेखनी रहे
पृथ्वी के कागज पर यदि शारदा लिखने लगे
पार नहां पायेगी – फिर मैं कौन होता हूँ ॥३२॥

असुर सुर मुनियो से पूजित महिमावान का
सकल गुण बरिष्ठ का स्रोत ऐसा प्राञ्चल
अलघु वृत्त के शिखरणी छन्द में, रस भर
पुष्पदन्त गन्धर्व ने प्रेम से बनाया है ॥३३॥

जो प्रेम पूर्ण पाठक हैं पढ़ते इस स्तोत्र को
शुद्ध चित्त होकर महादेव की सेवा में
इस लोक में पाते हैं धन-धान्य आयु पुत्र कीर्त्ति
फिर शिवलोक में शिव स्वरूप बनते हैं ॥३४॥

श्रेष्ठ नहीं कोई देवता है शिव से
महिम्न पाठ से बड़ा कोई स्तोत्र नहीं
मन्त्र में अघोर से श्रेष्ठ कोई भी नहीं
और गुरुदेव से ऊपर कोई तत्त्व नहीं ॥३५॥

दीक्षा दान तप तीर्थ ज्ञान योग क्रियायें हैं जितनी
महिम्न के पाठ की षोडशी कला के समतुल्य नहीं ॥३६।

कुसुम दशन नाम के जो गन्धर्व राज हैं
शशि धर श्रीशिव के दुर्लभ एक दास हैं
भ्रष्ट हुए कभी शिवजी के कोप से इसीपर
दिव्य महिम्न इस स्तोत्र को बनाया है ॥३७॥

पुष्प दन्त का बनाया यह स्तोत्र भी ऐसा है
सुरमुनि ने स्वर्ग मोक्ष हेतु पूजा है
जो हाथ जोड़कर इसको पढ़े प्रेमपूर्ण रह
किन्नरों से पूजित शिव समीप वह जाता है ॥३८॥

सावधान होकर पुष्पदन्त का लिखा पढ़ने से
कर कंठस्थ भाव पूर्ण पाठ करने से
जगता सौभाग्य ऐसा विभवशाली कि
शिव भूतपति तुरत मुग्ध होते हैं ॥३९॥

गायागीत पुष्पदन्त का अब समाप्त होता है
वर्णन अनुपम है शिव प्रभु की कीर्त्ति का इसमें ॥४०॥

हे महेश्वर नहीं जानता हूँ तत्त्व आपका
कह भी नहीं सकता कि आप प्रभु कैसे हैं
जैसे भी हों हे नाथ नमस्कार है सदा
आपकी महिमा को प्रणाम बारंबार है ॥४१॥

एक दो त्रिकाल में पाठ कर देने से
सभी पापों से मुक्त हो शिव लोक में बसेंगे ॥४२॥

इतनी वाङ्मयी पूजा श्री शंकर के चरणों में
अर्पित है हे देव सर्वदा प्रसन्न रहें ॥४३॥

ॐ

ॐ

शिव-ताण्डव

धग धग जलती है ललाट पर पावक लहरें
जटा कूप में निर्झर जैसी गंगा लहरें
चंद्राभूषण धारण वाले जो प्रिय शिव हैं
मेरे प्रतिक्षण की प्रीति रहे उनकी सेवा में ॥१॥

लंकापति ने अर्थ सिद्धि हित अनुनय विनय किया था
जो शिव गंगा जल से पावन सर्पों की माला रखते
डम-डम डम-डम डमरू का वह मधुर शब्द ले
भला करें मेरा वह जो हैं ताण्डव करते ॥२॥

गिरिपति की कन्या सङ्ग क्रीड़ा जो करते हैं बन्धु
भक्तों के दुःख को हरते दया दृष्टि फैलाकर
मन वाणी से परे सदा जो एक दिगम्बर
मन विनोद को मेरे विकसित कर देवें वह ॥३॥

आभा फैलाती मणियों की लिपटी फणीन्द्र कीफनियाँ
उसी पीत आभा से दिग दिगन्त पीला लगता है
दिशा-मदालसाओं के मुखपर केसर जैसे
गजासुर चर्मधारी शिव से मुदित होवे मेरा मन ॥४॥

भस्म किया काम को भाल के धक् धक् ज्वलित
वह्नि कण से, ब्रह्मादि भी उन्हें प्रणाम करते हैं
उन्नत ललाट है शोभित चन्द्र-किरणों से
गंगाधर कपाली मुझे चार फल दे देवें ॥५॥

इन्द्रादि के मुकुटों से गिरे पुष्पराग के पराग से
धूसर चरण हैं जिनके वासुकी हैं लिपटे जटा में
राका पति विराजें जिनके वृहत मस्तक पर
ऐसे सदाशिव मुझे चार फल देवें ॥६॥

धग् धग् जलती अग्नि में जिसने ललाट क्षेत्र में
आहुति दी थी प्रबल काम देव की
कुशल गिरिजा वक्ष पर चित्रकारी करने में
उन त्रिनेत्र में प्रीति मेरी बनी रहे ॥७॥

अमा तिमिर में मेघ से बढ़ता है अन्धकार
ग्रीवा निरादर करती है उस अन्धकार का
गज चर्म ओढ़ते हैं पोसते त्र्यैलोक्य को
कला निधान वृद्धि करें मेरी सम्पत्तिका ॥८॥

कंठ की शोभा कोसती है नील कमल को
कामारि त्रिपुरारि ने भंग किया दक्ष यज्ञ
गजासुर संहारक अन्धकासुर ताड़क वे
भजता मैं सदाशिव कालान्तक रुप को ॥६॥

मंगलदात्री कलाओं की कदम्ब मञ्जरी का मधुसेवी
कामारि त्रिपुरारि भक्तभयहारी शिव ही हैं
दक्ष यज्ञ ध्वंसकारी गजासुर संहारी ने नष्ट
किया अन्धे को मैं भजन करता हूँ ॥१०॥

नृत्य समय मस्तक पर भ्रमित नाग-जाल से
बढ़ रही कराल को भालाग्नि शिखा
धिम धिम जो मधुर शब्द डमरु हैं बोलते
जय महाराज शिवको, वही ये शब्द हैं ॥११॥

कब होगा वह समय शुभ जब सम दृष्टि होगी
पत्थर और पुष्प में मोती, रत्न, ढ़ेले में
शत्रु और मित्र में, रमणी प्रजा राजा में
कब समत्व योग में भजन करुँगा ॥१२॥

कौन समय होगा वह कल्याण कारी जब
वासना को त्याग कर हूँगा गंगा तट पर
कुञ्ज में निवास, अञ्जलि वद्ध मुद्रा लिए
गिरिजा को देखूँगा "ॐ नमः शिवाय" ॥१३॥

इन्द्रपुरी की अप्सराओं के शिरों से विरमित
पुष्प मालाओं के पराग-उष्णता-पसीने से
शोभित शिव शरीर की कान्ति के समूह को
देख कर मेरा मन परमानन्द पावेगा ॥१४॥

पाप समूह का नाश करें वड़वाग्नि की भाँति
देवियाँ जो गाती है वे ही शिवमन्त्र हैं
इन्हें आभूषण बना मंगल मनाती हैं गिरजाविवाहमें
वही ध्वनि जय देवे सारे संसार को ॥१५॥

पूजा समाप्त होने काल रावण के गीत को
जो प्रदोष काल में शिव पूजा में पढ़ते हैं
उनको रथ हाथी घोड़े मिलते हैं सर्वदा
लक्ष्मी सुमुखी का मिलना भी सुलभ है ॥१६॥

ॐ

साधु अकारण प्रेम करते हैं।
असाधु अकारण द्वेष करते हैं।

—भगवान् श्री निरंजन

शत्रु के प्रति भी शान्त, शीतल और मधुर रहें। घोर से घोर शत्रु को भी कोई महामना ही क्षमा कर सकता है।

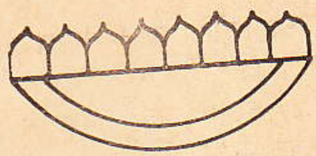

तुरीया चौथी अवस्था नहीं, तत्त्व है।

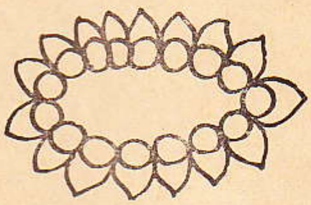

संसार में रहकर भी जो साधन कर सकते हैं, यथार्थ में वे ही वीर साधक हैं।

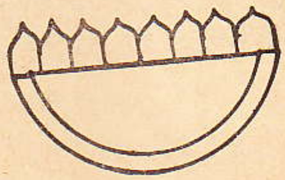

सच्चा शिष्य गुरु के किसी बाहरी कामपर लक्ष्य नहीं करता। वह तो केवल गुरु की आज्ञा को ही सिर नवाकर पालन करता है।

परनिन्दा और परचर्चा कभी न करें।

आशिर्वचन

ॐ

श्री रत्नेश्वरजी,

जय गुरुदेव।

आपने के हिन्दी शिव महिम्न
साक्षात् विष्णु रचित माने छो।

श्री रस्तु।
शुभमस्तु।

सोमानन्द
5/3/84

ॐ श्री शिव शरणं मम्

शिव महिम्न

महिमा अगम अपार अगोचर किसको इनका ज्ञान
इसीलिए गुण गायन में भी होगा क्या व्यवधान
बाधित होंगे क्या ब्रह्मादिक के भी स्तुति गान
सहज स्वमति से प्रयास यह, क्षमा करो हर, कृपानिधान ॥१॥

मात्र द्वार तक गम्य सकल पथ हो चाहे जितना सन्धान
मन वाणी से तुम अतीत हो सकुचाते श्रुति के विधान
सुलभ तत्त्व तेरे अनेक हैं विविध रुप धारणा ध्यान
मन वाणी निमित्त मात्र हैं नित नवीन रस यश: गान ॥२॥

मधुरसपागी सनी अमिय में वेदमयी वाणी श्रुतिगान
शक्ति नहीं अर्यमा की भी विस्मित देव गुरु का ज्ञान
रहे पवित्र वाणी यह मेरी गुण कीर्त्तन से पुण्यवान
यही सुमति उर में आयी है त्रिपुरारि की कीर्त्ति महान ॥३॥

तीनों वेदों में वर्णित है त्रिशक्ति के तुम आधार
तीन गुणों से तीन देव बन सर्जन पालन औ संहार
कारण है ऐश्वर्य तुम्हारा अविदित जड़मति को यह ज्ञान
महिमा भी कुछ जान न पाते भरमाता संतत अज्ञान ॥४॥

कहाँ बैठ करते हैं धाता त्रिभुवन सृष्टि का सन्धान
कैसा उनका रुप कौन गुण क्या हैं साधन उपादान
ऐसे कुतर्क अज्ञान के कारण अमित तव ऐश्वर्य महान
निश्चित तर्क से परे तुम्हारा सदा सर्व सामर्थ्यवान ॥५॥

अवयव सहित भूलोक आदि हैं रचना जिनकी है साकार
सृष्टि जब समक्ष है प्रस्तुत निश्चय है कोई सिरजनहार
ईश्वर कहें, कहें अन्य कुछ, बाधित नहीं सत्य ऋत ज्ञान
साधन तेरे परम विलक्षण व्यर्थ वितण्डा जल्पाधान ॥६॥

वेद सांख्य योग शैव मत वैष्णवादि का अनुशीलन
विविध रुप पथ तो अनेक हैं "रुचि वैचित्र्यात" रमण
सरल वक्र गति नदियों की थमता प्रवाह जब सिन्धु मिलन
कृपा स्वरुप आत्म दर्शन से चरणों में हो स्थिर मन ॥७॥

परशु खटवांग वरद वाहन फिर चिता भस्म का आलेपन
फणिपति औ' माला कपाल की करते व्याघ्र चर्म धारण
प्रगटित इनसे तंत्र तुम्हारा ऋद्धि सिद्धि पाते सुरगण
मृगतृष्णा से भ्रमित न होते सहज स्वभाव आत्मरतजन ॥८॥

जगत सत्य है कि असत्य है नित्यानित्य का आरोपन
ध्रुव-अध्रुव का मिश्रण समझें विविध भाँति से आलोचन
विस्मित हों पर बिनु लज्जा के रहें सतत रत गुण गायन
प्रगटित मेरी धृष्ट मुखरता, वरद, सकल में मधु सिंचन ॥९॥

प्रकट देखकर तेजपुंज को हरि ब्रह्मा चकित सहित सुरगण
अनुसन्धान हेतु धाता ने किया उर्ध्व में आरोहन
हरि गये अधः में पर न मिला कहीं उन्हें पद का सन्धान
स्तुति श्रद्धा भक्ति योग से प्रकट स्वयंभू दयानिधान ॥१०॥

सतत समर करने को उत्सुक लिए दशानन भुजा विशाल
अरिशमन बिनु प्रयास के तीन लोक मान्य भूपाल
त्रिपुरारि की भक्ति में स्थिर फल उसने पाया तत्काल
यह तो महाकमल की महिमा अर्पित श्री चरणों में भाल ॥११॥

सेवा और भक्ति से पाकर वन जैसी वे भुजा सबल
धाम सहित कैलाश उत्तोलन विक्रम का वह यत्न विफल
अंगूठे के हलके दबाव से पाताल गया मोहित चंचल
सच है बुद्धि भ्रमित होती है प्रभुता जब पाते हैं खल ॥१२॥

वरद चरणों का आराधन फल किया वाण ने वश त्रिभुवन
दो के भेद से ऊपर उठकर परिजन सरीस प्रजापालन
हीन बना अति उच्च इन्द्र पद इसमें क्या विचित्र कथन
शिव चरणों में शीश नवाकर स्वतः ही होता उर्ध्व गमन ॥१३॥

अकाल में ब्रह्मांड क्षय-शंका, भयभीत सुरासुर चित कम्पन
कराल विष ज्वाला शमन हित प्रकट हुए शिव त्रिलोचन
बिनु प्रयास ही पान किया विष नीलकंठ शोभा अनुपम
प्रशंसनीय विकार भी उनमें बने जो विश्व अभय कारण ॥१४॥

सन्धान अव्यर्थ विशिख का विश्व विजय मन्मथ अभियान
कुसुम बाण वर्षा से पीड़ित देवासुर नर एक समान
अन्य सुरों सा लेखा तुमको अनङ्ग मात्र रह गया नाम
जितेन्द्रिय का अपमान करके किसका हो सकता कल्याण ॥१५॥

शंका होती भू रक्षा की होता है जब पद आघात
घूर्णित चंचल नभ ग्रह तारे पाके तेरा भुजाघात
कम्पित द्यु लोक विचलित होता नटराज जटा की झटकार
विश्व सुरक्षा के हित नर्त्तन वामा की विभुता साकार ॥१६॥

गंगा है आकाश व्यापिनी तारागण गुम्फित विस्तार
उब-डुब करता धवल फेन में संवृत सिन्धु जग द्विपाकार
सूक्ष्म बिन्दु सम लसत् भाल पर व्योम व्यापिनी गंगाधार
तेरे दिव्य काया की महिमा प्रतिभासित भाषा के पार ॥१७॥

रवि-शशि चक्र युक्त पृथ्वी रथ ब्रह्मा सारथी रुप वरण
मेरु धनुष औ वैष्णवास्त्र ले स्वयं रथी बन आरोहण
त्रिपुर तुम्हारे लिए है तृणवत् सजा साज यह आडम्बर
महानट है खेल तुम्हारा नहीं परतन्त्र कभी भी हर ॥१८॥

नित्य करें हरि चरण वन्दना सहस्त्र कमल से पूजन
पड़ा ऊन तो सहज भक्ति से नयन किया निज अर्पण
दृढ़ भक्ति ही प्रकट विष्णु कर महिमामय चक्र सुदर्शन
तीनों लोक की रक्षा में वह घूम रहा है प्रतिक्षण ॥१९॥

तुम शिव यज्ञों के फलदाता वेदों का यह गायन
श्रद्धा औं विश्वास से करते कर्म यज्ञ का साधन
विगत कर्म बनते फलदायक एका तव आराधन
भक्तों के हित सतत हो प्रस्तुत चेतन पुरुष पुरातन ॥२०॥

कर्म कुशल दक्ष प्रजापति करें यज्ञ का आयोजन
ऋषिगण ऋत्विज और यज्ञ में देवों का भी सम्मेलन
ध्वंस हुआ मख किया दक्ष ने एक तुम्हारा अवहेलन
श्रद्धाहीन यज्ञ निश्चय ही बनता विनाश का कारण ॥२१॥

ब्रह्मा वशीभूत काम के किया मृगा का रुप वरण
मृगी बनी सभया तनुजा प्रति उनका अनुचित आकर्षण
उठा कठिन कोदंड पुरारी चला सपत्र वाण घन-घन
मृगया में मृग व्याध प्रताड़ित वैसे मृगशिरा प्रतिक्षण ॥२२॥

किया भस्म पुष्पधन्वा को तुमने पल में तृण समान
अर्द्ध अंग की स्वामिनी देवी पार्वती को हुआ गुमान
स्वलावण्य रुपगर्विता मानें तियवशी भगवान्
सहज स्वभाव मुग्ध युवतीगण वरद रहस्यपूर्ण यह ज्ञान ॥२३॥

श्मशान में क्रिड़ा करते पिशाचादि संग वर्त्तन
चिताभस्म लेपन काया में मुण्डमाल का आभूषण
जग समझे इन्हें अमंगलकारी तथापि हे मदन-दहन
सदा सर्व मंगल का कारण वरद, तुम्हारा ही सुमिरन ॥२४॥

अंतरमुखी चित्तवृत्ति औ करें हंसिनी का नियमन
अमृत वापी में अवगाहन तापत्रयी का विमोचन
पुलकित तन नयनाश्रु भरे करते जिसका अवलोकन
अकथ अनूप अनादि अचिंतन परम तत्त्व तुम निरंजन ॥२५॥

सूर्य तुम्हीं, तुम्ही सोम हो और तुम्हीं हो प्रभंजन
जल रुप में तुम्हीं द्रवित हो और तुम्हीं हो हुताशन
तुम्हीं क्षिति तुम्ही हो आत्मा और तुम्हीं हो महागगन
सभी तत्त्व में एक तुम्हीं हो व्याप्त तुम्हीं से है कण-कण ॥२६॥

तीन वेद औ तीन देव वन तीन भुवन में नित्य रमण
प्रणव स्वरुप तुम्हारा चिन्मय अकार उकार मकार वरण
अवस्था त्रयी के तुरीय धाम में, वरद, वास तेरा प्रतिक्षण
एक अनेक, अनेक एक से त्रिगुणातीत तुम उमारमण ॥२७॥

भगवान् श्री विष्णु तीर्थ
श्री सोमानन्द नाथ निरंजन
देव त्रिविक्रम विष्णु महान्
महा विष्णु पर्याय परम शिव
ऐषय बखाने वेद पुराण

भव शर्व रुद्र पशुपति महादेव भीम ईशान
उग्र सहित शिव नामाष्टक का करें वेद नित महिमा गान
बिहरें इनमें नित्य देवगण शुभ फल दायी है प्रतिनाम
इन नामों के प्रियधाम तुम करता बारम्बार प्रणाम ॥२८॥

नमो विजन वन बिहारी अति निकट दूर वासी प्रिय देव नमो
नमः अति सूक्ष्म रुपधारी महाविराट के प्रसारी स्मरहर नमः
नमो पुरुष पुरातन चिर युवा रुप धारण त्रिनयन नमो
नमः सकल में बिहारी सर्वरुप धारी अकथ निष्कल नमः ॥२९॥

भव रुप में सृष्टि विश्व की रजोगुणी है, नमो नमः
हर रुप में लय सृष्टि की तमोगुणी है, नमो नमः
मृड रुप में जन मन रंजन सतोगुणी है, नमो नमः
अकथ स्वरुप अनादि निरंजन, गुणातीत है, नमो नमः ॥३०॥

सतत क्लेश के वश में रहता राग द्वेष से कलुषित
गुणातीत तुम देव सनातन महिमा अमित अखंडित
भक्ति के प्रसाद रुप निज निर्भयता पर विस्मित
स्तुति का पुष्पोपहार श्री शिव चरणों में अर्पित ॥३१॥

कालागिरि सम कज्जल हो सिन्धु बनै मसिपात्र
कल्पतरु की बने लेखनी भू हो पत्राकार
अनवरत यदि लिखें शारदा तेरे गुण गण गान
महिमा अपरम्पार सदाशिव कभी न हो अवसान ॥३२॥

सकल सुरासुर मुनिगण पूजित चन्द्रमौलि भगवान्
निर्गुण ईश्वर की महिमा के अकथ गुणों का गान
कुसुमदन्त गन्धर्व भक्त जो श्रेष्ठ सकल गुण खान
रुचिर शिखरिणी वृत्त में प्रस्तुत शिव की कीर्त्ति महान ॥३३॥

शुद्ध चित्त शुचिता से नित जो इस स्तुति का पाठ करें
धूर्जटी कृपा परम भक्तियुत् वे निश्चय ही फल पायें
धन प्रचुर आयु में वृद्धि पुत्र सुयश को प्राप्त करें
निर्मल बनकर शिव धाम में सायुज्य मुक्ति भी पायें ॥३४॥

महेश से परे देव नहीं, महिम्न से परे न स्तुति कोई
अघोर से परे मंत्र नहीं, गुरु से परे न तत्त्व कोई ॥३५॥
दीक्षा दान तप तीर्थ ज्ञान योगादि क्रिया का विधान
महिम्न स्तुति दिव्य पाठ से कला षोडशी के समान ॥३६॥
सभी गन्धर्व गणों के राजा पुष्पदन्त सुनाम
देवाधिदेव चन्द्रचूड़ के दास बड़े प्रियधाम
भ्रष्ट हुए निज महिमा से शिव गुरु क्रोध के कारण
शरणागत हो शिवस्तुति में दिव्य महिम्न का गायन ॥३७॥
सुर वर मुनि सबसे पूजित है स्वर्ग मोक्ष फलदाता
महा अमोघ इस स्तुति के पुष्पदन्त प्रणेता
कर बद्ध हो एक चित्त से पाठ करे गुण गाता
किन्नर उसकी करें बन्दना शिव सामीप्य है पाता ॥३८॥

श्री पुष्पदन्त मुखकंज से निकली
स्तुति अघहारी शिव को प्यारी

याद रखें या पाठ करें या कि करें नित ध्यान
होते प्रसन्न महेश हैं भूतनाथ भगवान् ॥३९॥
गन्धर्व रचित पुनीत स्तुति यह अब समाप्त होती है
महा ईश शिव का गुण वर्णन अनुपम मनमोहक है ॥४०॥
महेश्वर तत्त्व नहीं जानता, नहीं जानता कैसे हो
हे महादेव, करता प्रणाम हूँ जहाँ भी तुम जैसे हो ॥४१॥
एक काल दो काल या तीनों काल जो पाठ करे
सभी पापों से मुक्त बने औ' शिव लोक में वास करे ॥४२॥
वाग्देवी कृपा से प्राप्तकर पूजा के ये फूल
श्री शिव चरणों में अर्पित हैं, रहें सदा अनुकूल ॥४३॥

ॐ

जय श्री नाथ !
जय गुरुदेव !!

—रत्नेश्वर

शिवमहिम्नस्तोत्रम्

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येषः स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥१॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षा प्रलयकृत्
त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीम्
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजननमेकः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर ! संशेरत इमे ॥६॥

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहिताम्
न हि स्वात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वद्ध्रुवमिदम्
परो ध्रौव्याऽध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन ! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्वेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनिलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्ति श्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणी रचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरविस्फूर्जितमिदम् ॥१२॥

अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥

यदृद्धि सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोः
न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अकाण्ड—ब्रह्माण्ड—क्षयचकितदेवासुरकृपा
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयनविषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश ! त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदम्
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिनगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमताम्
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवम्
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्
ऋषीणामार्त्विज्यं शरणद ! सदस्याः सुरगणाः !
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरम्
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुः पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुम्
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटनाद्
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥

स्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलम्
तथापि स्मर्तृणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरम्
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२६॥

त्रयी तिस्रो वृत्तिस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृतिः ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव ! श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२९॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्वचेदम्
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश ! पारं न याति ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दु मौले
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्-
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ॥
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्टएवास्यरोषात्
स्तवनमिदमकार्षी द्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८॥

श्री पुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥३९॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गंधर्वभाषितम्
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥४०॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४१॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४२॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४९॥

॥ श्री शिवमहिम्नस्तोत्रम् समाप्तम् ॥

ॐ

शिवताण्डव-स्तोत्रम्

जटाकटाहसम्भ्रभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी
विलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपाव के
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥१॥

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले।
गलेऽवलम्ब्यलम्बितां भुजंगतुंगमालिकाम्॥
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयम्।
चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्॥२॥

धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुर-
स्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे।
कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि
क्वचिद्दिगम्बरेमनोविनोदमेतु वस्तुनि ॥३॥

जटाभुजंगपिंगलस्फुरत्फणामणि प्रभा-
कदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं बिभर्तु भूतभर्तरि ॥४॥

ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभा
निपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम्।
सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरम्
महाकपालिसम्पदेशिरोजटालमस्तु नः ॥५॥

सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखर-
प्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः।
भुजङ्गराजमालयानिबद्धजाटजूटकः
श्रियैचिरायजायताञ्चकोरबन्धुशेखरः ॥६॥

करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्वल-
द्धनञ्जयाहुतीकृतप्रचंण्डपञ्चसायके ।
धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-
प्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने रतिर्मम ॥७॥

नवीनमेघमंडलीनिरुद्धदुर्धरस्फुर-
त्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबद्धकन्धरः ।
निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसुन्दरः
कलानिधानबन्धुरः श्रियै जगद्धुरन्धरः ॥८॥

प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमप्रभा-
वलम्बिकण्ठकन्दलीरुचिप्रबद्धकन्धरम् ।
स्मरच्छिदंपुरच्छिदंभवच्छिदंमखच्छिदं-
गजच्छिदान्धकच्छिदंतमन्तकच्छिदंभजे ॥९॥

अखर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरी-
रसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् ।
स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं
गजान्तकान्धकान्तकन्तमन्तकान्तकंभजे ॥१०॥

जयत्यदभ्रविभ्रमस्फुरद्भुजंगमश्वसद्-
विनिर्गभक्रमस्फुरत्करालभालहव्यवाट् ।
धिमिन्धिमिन्धिमिन्ध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमंगल-
ध्वनिक्रमप्रवर्त्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥११॥

दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजो-
गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः ।
तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहेन्द्रयोः
समप्रवृत्तिकः कदा सदाशिवं भजाम्यहम् ॥१२॥

कदानिलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरेवसन्
विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमञ्जलिंवहन् ।
विमुक्तलोललोचनो ललामभाललग्नकः
शिवेतिमन्त्रमुच्चरन्सदासुखीभवाम्यहम् ॥१३॥

निलिम्पनाथनागरीकदम्बमौलिमल्लिका
निगुम्फनिर्झरक्षरन्मधूष्णिकामनोहरः ।
तनोतु नो मनो मुदं विनोदिनीमहर्निशं
परःश्रियः परम्पदन्तदङ्गजत्विपाञ्चय ॥१४॥

प्रचण्डवाडवानल प्रभाशुभप्रचारिणी
महाष्टसिद्धिकामिनीजनावहूतजल्पना
विमुक्तवामलोचनाविवाहकालिकध्वनिः
शिवेतिमंत्रभूषणा जगज्जयायजायताम् ॥१५॥

पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे ।
तस्यस्थिरांरथगजेन्द्रतुरंगयुक्तां लक्ष्मीं सदैवसुमुखीं प्रददातिशंभुः ॥

ॐ

ॐ

सद्गुरवे नमः श्री गणेशाय नमः

पादुका महिम्न

पादुका पूजन की महिमा
पूछे कोई भरत से
शाम्भवी मुद्रा चिन्मय आनन
वे तो मौन रहेंगे ॥१॥

पर न रहेंगे मौन राम
घट-घट अन्तर वासी वे
मौन साध कर अन्दर देखें
भक्ति द्रवित वे होंगे ॥२॥

चौदह वर्ष प्राज्ञ तपस्या
तुरीय मुक्त माया से
भीषण रण जय अग्नि परीक्षा
सूक्ष्म पादुका बल से ॥३॥

राम राज्य सुयश का सौरभ
भरत मुदित तन-मन से
देश काल के परे व्याप्त है
ऋषि-मुनि के गायन से ॥४॥

सुरभित प्रांगन सदा यथावत्
साधक के पूजन से
युग-युग से प्राप्त पूजन क्रम
पादुका सनातन गुरू से ॥५॥

गुरू पादुका के पूजन से
दुर्लभ सुलभ बनाते
करें सकाम पूजन यदि साधक
प्राप्त अभिप्सित करते ॥६॥

निष्काम भाव से करें जो पूजन
सदा पूर्ण वे रहते
द्वादस दल विकसित रहता है
कुल को सुरभित करते ॥७॥

पा-पार्वती करतीं पोषण
पालन करतीं यतन से
दु-दुर्गा हैं महिषमर्दिनी
दलन दुष्ट बुद्धि-बल से ॥८॥

का-कामेश्वरि महिमामण्डित
चिदग्नि-कुण्ड सम्भूता
शुद्ध-चैतन्य जगातीं देवी
परम सुलभ हो जाता ॥९॥

काया साधक की बनती अयोध्या
आत्मा अवध कहाता
बैठ राजधानी में शांत मन
राम-राज्य सुख पाता ॥१०॥

ॐ

—रत्नेश्वर

ॐ

संवाद

भीषण घोर सूक्ष्म व्योम में
देवासुर संग्राम भयंकर
निर्णायक वह क्षण आया है
श्वांस रुद्ध कर देखें अम्बर ॥१॥

दुष्ट दैत्य दानव समूह का
सैन्य विशाल संगठन प्रबल
जूझ रहे प्राणों के पण से
सावधान हो देव सकल ॥२॥

दिग्-दिगन्त में गूञ्ज रहा है
डिम-डिम डमरू का विनाद
हुंकार पूरीत दिक्-मंडल
शंख ध्वनि संकेत नाद ॥३॥

सावधान, स्थिर मन होकर
सुनें स्पष्ट शिव का आह्वान
देव विजय में निहित है निश्चित
सकल के हित का प्रावधान ॥४॥

पूजन कित्तंन भजन नाम-जप
योग-याग औ' मंत्रोच्चार
ज्ञान-ध्यान आसन समाधि से
निज-निज शक्ति के अनुसार ॥५॥

विविध मार्ग औ' सम्प्रदाय के
स्व-स्व परम्परा अनुरूप
देव कार्य साधन हों तत्पर
उद्देश्य एक में एकजूट ॥६॥

गृही वाणप्रस्थी सन्यासी
निज कर्त्तव्य पालन का बल
सौम्य भाव से करें समर्पित
आधार है समता का संबल ॥७॥
संयुक्त बल महाशक्ति अवतरण
ध्रुव है दैत्य दानव संहार
एक बार फिर भू पर होवे
सुख शान्ति आनन्द प्रसार ॥८॥

ॐ

—रत्नेश्वर